परम्परागत चित्रकला पर नवीन प्रवृत्तियों का प्रभाव

रंजीता मौर्या

(शोधार्थी)
दृश्यकला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

किसी भी देश की संस्कृति एवं सभ्यता का मूल्यांकन वहां की कला परम्परा के माध्यम से किया जाता है। परम्परागत कलाएं सौन्दर्य का सृजन करती है। सौन्दर्य के प्रतिमान देश काल तथा परिस्थिति के अनुरुप समय समय पर परिवर्तित होता है। भारत में भी कला का स्वरुप धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक मान्यताओं के आधार पर परिवर्तित व परिवर्द्धित होता रहा है। भारतीय कला प्रागैतिहासिक काल से अनवरत् विभिन्न शैलियों के रुप में दृष्टिगत होती है। समय काल तथा परिस्थितियों के आधार पर प्रत्येक युग की कला अपने समय की आधुनिक कला के रुप में जानी जाती रही है। कला के तत्व सदैव एक से रहते है किन्तु उनका संयोजन देशकाल और स्वंय कलाकार की विचारधारा के अनुरुप परिवर्तित होता रहता है। भारत की पारम्परिक चित्रकला ज्यामितीय एवं रेखीय गुणों से परिपूर्ण रही है। इन्ही संरचनात्मक रुपों में संयोजन का विन्यास हुआ है।

परम्परागत चित्रकला प्रारम्भ से ही सौन्दर्य प्रधान रही है। आत्मिक अभिव्यक्ति ही इसका प्रमुख उद्देश्य रहा है। परम्परागत चित्रों में आकृतियों में विभिन्न प्रयोग तो प्रारम्भ से ही हुये है किन्तु वो निरन्तर ही और समृद्ध होते हुये चित्रित हुए हैं। एक विकसित शैली के रुप में पारम्परिक चित्र वर्षों से भारत के विभिन्न क्षेत्रों में बनाये जा रहे है। जो कि उस क्षेत्र विशेष की अंतराष्ट्रीय पहचान बन गये हैं। आज की लोक जनजातीय कलाओं में परम्परागत सहजता मौजूद है हालांकि लोक कलाकार भी आज के जीवन से प्रभावित होकर नागर कलाकारों की तरह ही कुछ नया रच रहे हैं। ज्यादातर पारम्परिक कलाकार आज भी अपनी प्रवृत्तियों को जीवित रखने के लिए संघर्ष कर रहे है। किन्तु बाजार में अपनी जगह बनाने और जीविका चलाने के संघर्ष ने उन्हे नयी प्रवृत्तियों को अपनाने के लिये बाध्य कर दिया है।

भारतीय कला परम्परा पर दृष्टि डालें तो यह भी पायेंगे कि कोई भी कलाकृति दीर्घ समय तक समाज में तभी बची रह सकती है जब उसमें कलाकार स्वंय कहीं नहीं होता। अजंता, राजस्थानी, मुगल आदि पारम्परिक शैली के चित्र अद्भुत है उसे उसी रुप में स्वीकार किया गया है। वर्षों के बाद भी वहां के सौन्दर्य का अन्वेन्षण आज भी हो रहा है। परम्परागत चित्रकलाओं की विशेषता रही है कि उन चित्रों में कलाकार नहीं बल्कि अभिव्यक्ति और सौन्दर्य ही प्रमुख रहा है और इनमें सदैव निरन्तरता दिखाई पड़ती है। सत्रहवीं शती की उड़ीसा की स्थानीय चित्रकला में मुगल दक्षिणी तथा विजय नगर की कला शैलियों का समिश्रण हुआ। इनके प्रभाव से लोककला का वेग अपभ्रंश शैली की अन्तराल व्यवस्था, विजय नगर शैली का आकर्षित विधान दक्षिणी शैली की अलंकारिकता तथा मुगल शैली का प्रभाव भी पड़ा। राजस्थानी शैली पर तत्कालिक राजाओं की रुचियों के अनुसार विषयों, संयोजन में तकनीकि प्रयोग हुये। धार्मिक ग्रन्थों, पुराणों, महाकाव्यों का अंकन तो पहले भी भारत के प्रत्येक प्रदेश की तत्कालिक शैलियों में होता रहा है किन्तु राजस्थानी शैली में रागमाला ,बारहमासा, एवं दरबारी दृश्यों, रानियों, शिकार दृश्यों, महलों, प्राकृतिक दृश्यों को प्रमुख स्थान मिलने लगा था। मुगल काल में भी शासकों की अभिरूचियों के अनुसार ग्रन्थों पशु–पक्षी चित्रण, व्यक्ति चित्रण, युद्ध दृश्यों, पंचतंत्र का अंकन किया गया।

भारत में विदेशी आक्रमणों का भी सीधा प्रभाव वहां की प्रचलित परम्रागत चित्र शैलियों पर पड़ा। उपहार स्वरूप आदान प्रदान किये जाने से चित्रशैलियों में तकनीकि एवं विषयगत प्रभावों का भी आदान प्रदान हुआ। ब्रिटिश काल के प्रभाव में चित्र के सम्पूर्ण आकल्पन पर ध्यान देना छोड़ कर और राजा रवि वर्मा के प्रभाव में लगभग एक ही आदर्श में सादृश्य मूलक चित्र बनाने लगे। भारत में पारम्परिक चित्रकला पर आधुनिकता का प्रभाव राजा रवि वर्मा द्वारा कैलेण्डर आर्ट की विधा के प्रारम्भ से मान सकते है। इस विधा के द्वारा चित्रों की कई प्रतियों के उत्पादन की नयी प्रवृत्ति का जन्म हुआ। इस प्रकार चित्रों की पहुंच आम लोंगों तक आसानी से हो गई। राजा रवि वर्मा ने तत्कालीन लोक जीवन एवं नाटक

मण्डलियों से प्रेरणा ग्रहण की और प्राचीन देवी देवताओं ,पुराण के चरित्रों की कल्पना को साकार किया। इनके रेखांकन, वर्ण योजना, विषय, संयोंजन पर यूरोपीय प्रभाव पड़ा किन्तु विषय सदैव ही भारतीय रहे।

पारम्परिक रुप से भारतीय पौराणिक देवी देवताओं के अंकन कई रुपों में किया जाता रहा है। किन्तु राजा रवि वर्मा के चित्रों ने इनकी कल्पना एवं प्रभाविता को नये आयाम दिये। राजा रवि वर्मा के बाद मानवाकृति निरुपण की नई प्रवृत्ति का आगमन होता है। ब्रिटिश शासन के कला विद्यालयों के खोले जाने और उनमें पाश्चात्य शैली से कला शिक्षा का प्रारम्भ भारत के कला जगत में नया अध्याय आरम्भ करता है। पश्चिमी कला की शिक्षा देने के लिए मद्रास में मद्रास कला विद्यालय (1850) बंगाल में कलकत्ता कला विद्यालय (1854) बम्बई में बम्बई कला विद्यालय (1857) और मेयो स्कूल ऑफ आर्ट लाहौर (1875) की स्थापना की गई। इन कला विद्यालयों द्वारा प्रारम्भ में पारम्परिक शिल्प की शिक्षा दी जाती थी। किन्तु बाद में यहां यूरोपीय कला पद्धति से शिक्षा दी जाने लगी। जहां चित्रण में छाया प्रकाश एवं रेखाओं के स्थान पर रंगों के घनत्व पर अत्यधिक बल दिया जाने लगा था। स्थिर जीवन का चित्रण एवं रंग प्रधान चित्रों को ही प्रमुखता दी जाती थी। इसका प्रभाव वहां के क्षेत्रीय कलाकारों पर भी पड़ा और उनकी कला शैली में भी कुछ तत्कालिक परिवर्तन आने प्रारम्भ हो गये।

बंगाल शैली का प्रारम्भ भी पारम्परिक चित्रों की विशेषताओं के साथ हुआ किन्तु चित्र की आन्तरिक संरचना और लय पर उन्होने भी ध्यान नहीं दिया। बंगाल शैली में प्रारम्भ से ही समतल क्षेत्रों तथा रेखाओं के बढ़ते हुए महत्व की ओर विशेष ध्यान दिया गया और रेखाओं के अखण्ड महत्व को प्रचारित रुपों में नन्दलाल बोस का योगदान उल्लेखनीय है, उन्होने भारतीय चित्रकारों को परामर्श दिया कि "विस्तृत विश्लेषण के मार्ग से ही उनको पूर्णता तक पहुंचना चाहिए,अखण्डतापूर्ण आरम्भिक जानकारी के पश्चात ही आकृति की कुल कला सीमा रेखा का अनुमान लगा पायेंगे और तभी अन्य बारीकियों तक भी पहुंचने में सफल हो सकेंगे।'' भारतीय आधुनिक चित्रकार भारत की परम्परागत पद्धतियों का प्रयोग करते हुए प्रायः सपाट रंग भरकर बाह्य सीमा रेखा का अंकन कर भारतीय पद्धति तथा मान्यताओं के अनुसार रंगों परिधानों एवं पृष्ठभूमि का अंकन समतल क्षेत्रों का विकास, कालीघाट के पटचित्रों की प्रेरणा से हुआ है। जिसका प्रभाव यामिनी राय के चित्र *स्त्रियां, मां और शिशु,* पर देखा जा सकता है।

भारतीय परम्परागत कला आज आधुनिकता से अछूती नहीं है चाहे वो शिल्पकला हो, चित्रकला, या मूर्तिकला हो और उनसे प्रेरणा प्राप्त कर कई आधुनिक कला कार इनमें नवीन प्रवृत्तियों का समावेश कर नयी रचनाएं कर रहे है। परम्परागत तरीके से चली आ रही पद्धतियों में तकनीकि और वैचारिक एवं प्रस्तुति में प्रयोग हो रहे है। ये रचनाएं परम्परागत होते हुए भी समकालीन परिप्रेक्ष्य में अपना अलग स्थान बनाती है। बिहार की मधुबनी चित्रकला आज के सन्दर्भ में पारम्परिक होते हुए भी नवीनता के साथ चित्रित की जा रही है। घर की दीवारों से निकलकर अब ये चित्र कागजों पर नवीन विषयों के साथ चित्रित किये जा रहें है। इन चित्रों पर समसामयिक विषयों एवं तकनीकि का भी प्रभाव पड़ रहा है। खनिज रंगों के साथ साथ बाजार में उप्लब्ध रंगों का भी प्रयोग होने लगा है। इसका प्रमुख कारण है खनिज रंगों को तैयार करने में लगने वाला समय। कागज पर होने के कारण इनका क्रय और विक्रय भी सम्भव है।

भारतीय पारम्परिक चित्रकला में रेखाओं रुपों ,धरातलों के साथ साथ रंगों का भी अपना प्रमख स्थान है। इनकी दो विशेषतएं पहली रेखाओं में लयात्मक सौन्दर्य और दूसरी विशेषता सूक्ष्मता के साथ मिश्रित रंग योजना अर्थात कोमल रंगों की विभिन्न स्तरीय मिश्रित प्रयोगों की प्रभावोत्पादकता है। यद्यपि जलरंगों को का प्रयोग ही सर्वोच्च रहा है। लेकिन बाद में जल रंगों का स्थान टेम्परा ने ले लिया। कुछ पारम्परिक चित्रकार चित्रों के निर्माण में एक्रेलिक रंगों का प्रयोग सहजता से कर रहे है। क्योंकि खनिज रंग तैयार होने में परिश्रम और समय अधिक लगता है।

परम्परागत चित्रकला के नये युग का प्रारम्भ स्वतंत्रता के बाद प्रारमभ होता है। यद्यपि स्वतंत्रता पूर्व ही कला के क्षेत्र में नवीन प्रवृत्तियों का समावेश होने लगा था। भारतीय परम्रागत चित्रकला की प्रमुख विशेषता रेखांकन रही है। जिसका सबसे श्रेष्ठ नवीनतम प्रयोग आधुनिक चित्रकार मकबूल फिदा हुसैन, तैयब मेहता, और रजा के चित्रों में देखने को मिलता है। हुसैन आजादी के बाद के भारतीय कलाकारों में सबसे महत्वपूर्ण में से एक है। उन्होने आधुनिक भारतीय कला को एक सुस्पष्ट दिशा दी। हुसैन भारतीय धर्मों, गाथाओं और मिथकों के साथ साथ वर्तमान सामाजिक ,राजनीतिक परिस्थिति से भली भांति सम्बद्ध रहे।

20वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध समकालीन कला जगत में दुनिया के साथ साथ भारतीय स्तर पर भी नये राजनीतिक सामाजिक आर्थिक और पर्यावरण के मुद्दों को समेटे हुये था। जिसने राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय कलाकारों को अभिव्यक्ति हेतु नवीन विषय दिये। उस वक्त उदारीकरण की बात हो, रामशिला पूजन और बाबरी मस्जिद के विध्वंस का मुद्दा हो, किसानों की आत्म हत्या, ग्रीनहाउस इफेक्ट और ग्लोबल वार्मिंग, शुद्ध पेयजल की समस्या, जल के घटते स्तर, धार्मिक दंगे का विषय हों। इन सभी पर कलाकारों ने अपनी रचनात्मक प्रतिक्रिया दी। समकालीन भाारतीय चित्रकला पर जहां पिछले दशकों की विभिन्न पाश्चात्य चित्रकला प्रवृत्तियों का गहरा असर है, वहीं वह अपनी परम्परागत विशिष्टताओं का भी प्रतिनिधित्व करता है, जो सैकडों वर्ष पुराना है। पाश्चात्य के महत्वपूर्ण कला आन्दोलन जैसे दादावाद, घनवाद, अतियथार्थवाद, अभिव्यंजनावाद एक खास समय के चित्रकारों और उनकी रचनाओं तक ही सीमित नही थे,बल्कि ऐसे आन्दोलनों में लेखकों, कवियों, चित्रकारों, रंगकर्मियों और चिंतकों की भागीदारी थी। आजादी के पहले ही भारतीय चित्रकारों का एक बड़ा वर्ग समाज और अपने समय के प्रति उनकी जिम्मेदारी के बारें में अत्यन्त सजग था। जहां चित्तप्रसाद, जैनुअल आबदीन, सोमनाथ होर, बेन्द्रे, बी0 प्रभा0, कृष्ण खन्ना, रामेश्वर ब्रूटा, गुलाम शेख, आदि कुछ उदाहरण है।

कलकत्ता ग्रुप के कलाकारों में गोवर्धनसेन, हेमन्त मिश्र, तथा परितोष सेन ने अपनी कला का आधार परम्परागत शैली को बनाया। इसी पकार दक्षिण भारत में कुछ कलाकार पैडी राजू भी परम्परागत चित्रकला के सरल विन्यास ,रंग योजना से प्रभावित होकर अपनी कृतियों में नवीन प्रयोग करते हुए रचनाएं की। अन्य कलाकारों में जे0 सुल्तान अली, लक्ष्मण पै, ज्योति भट्ट, भगवान कपूर, शीला ऑडेन, सतीश गुजराल, देवयानी कृष्ण, बद्री नरायण आर्या, जे0 रामपाल, मनजीत बाबा, कमला मित्तल, पी0 खेमराज ऐसे कलाकार हैं जिन्होने क्षेत्रीय परम्परागत एवं लोक कला शैलियों से प्रेरणा ग्रहण करते हुए एवं पाश्चात्य कला प्रवृत्तियों में समन्वय करते हुए श्रेष्ठ कृतियां बनाई। श्यावक्स चावड़ा स्लेड स्कूल लन्दन में दो वर्ष प्रो0 रूडोल्फ श्वाबे, ब्लादीमिर पोलुनिन आदि श्रेष्ठ कलाकारों तथा स्टेज सज्जाकारों से प्रशिक्षण प्राप्त किया और फिर एक वर्ष फ्रांस की अकादमी द–ल–ग्रान्दे शामिये के कलाचार्यों से उनकी कला की बारीकियों को सीखा। भारत लौट कर अपनी इस कला शिक्षा का अपने देश की पारम्परिक कलाओं के साथ समन्वय किया। प्रसिद्ध चित्रकार विमल दास गुप्ता के चित्रों में तांत्रिक एवं फंतासी तत्व जुड़ने लगे। जिसका उन्होने अमूर्त रुप में अंकन किया है। रावलपिंडी में जन्में जसवंत सिंह (1918) जो बाद में दिल्ली में रहने लगे थे अपने चित्रों में रागमाला को विषय बनाया। जिसमें उन्होने राजस्थान व पहाड़ी चित्रकारों से भिन्न प्रतीकों का प्रयोग किया है जो अतियथार्थवादी विचित्र रूपों से सम्बन्धित हैं।

कला में अभिव्यक्ति की वैचारिक क्रियाओं का नित नया मुहावरा सामने आ रहा है। माध्यम में नये अविष्कार ,प्रयोगों और सूचना एव संचार प्रौद्योगिकी का उपयोग कला में सार्वजनिक स्तर पर हो रहा है। जिससे पारम्परिक चित्रकार भी अछूते नही रहे है। पिछले कुछ समय में कलायें समाज के आरै निकट आई है। सार्वजनिक स्थलों पर कलाकषति के प्रदर्शन की बडी वजह कलाओं से अधिक से अधिक दर्शकों को जोडने की रही है। सांस्कृतिक विरासत और आस्था के साथ मानव का सामाजिक जीवन प्रचार की कभी न खत्म होने वाली भूख से इसी से अत्यधिक जटिल भी होता जा रहा है। कलाकार की आन्तरिक संवेदना ही उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को द्योतित करती है। प्रयोगों की प्रक्रिया से एक विस्तृत मार्ग तय करते हुए कला की उप्लब्धि की सीमा तक पहुच चुकी है। परम्परागत कलाकार नित नवीन खोज करने और प्राप्त करने को ही उत्सुक है। वस्तुतः कला को नवीन धरातल पर प्रतिष्ठित करना एक समयोचित आवश्यकता है। जो विकास का संकेत देती है। नवीन तकनीकों तथा दृष्टिकोंणों से कला में क्रांति आई है और अब सब कलाकार की अनुभूति को सीमाओं में नही बांधा जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. समकालीन भारतीय चित्रकला हुसैन के बहाने, अशोक भौमिक,अंतिका प्रकाशन
2. आधुनिक भारतीय चित्रकला, गिर्राज किशोर अग्रवाल,
3. समकालीन कला, कृष्ण नारायण कक्कण, ललित कला अकादमी,नई दिल्ली
4. आधुनिक भारतीय चित्रकला, डॉ0 गि0कि0 अग्रवाल, संजय पब्लिकेशन आगरा–3
5. भारत की समकालीन कला, प्राण नाथ मागो, नेशनल बुक ट्रस्ट,इण्डिया पहला संस्करण 2006